International Journal of Applied Research 2016; 2(3): 662-667

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(3): 662-667
www.allresearchjournal.com
Received: 26-01-2016
Accepted: 28-02-2016

डॉ. सर्वजीत दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत,
मामा बालेश्वर दयाल राजकीय महाविद्यालय, कुशलगढ़,
बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ. सर्वजीत दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत,
मामा बालेश्वर दयाल राजकीय महाविद्यालय, कुशलगढ़,
बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

संस्कृत अध्ययन का प्रयोजन

डॉ. सर्वजीत दुबे

सारांश
प्रायः लोग पूछते हैं कि आज संस्कृत भाषा के लिए कोई क्यूंकर समय और श्रम लगाए? निश्चितरूपेण पद,पैसा और प्रतिष्ठा के अर्जन में आज संस्कृत का बहुत बड़ा योगदान नहीं है, लेकिन आज जीवन पद-पैसा-प्रतिष्ठा के साथ शांति और सार्थकता की भी मांग कर रहा है। पश्चिम में धन खूब बढ़ा लेकिन मन बहुत नीचे गिर गया। 'पानी बिच मीन पियासी' कबीर की यह कहावत पश्चिमी देशों को देखकर समझ में आ सकती हैं। इसीलिए पश्चिम के विद्वान संस्कृत से परिचित होने के बाद संस्कृत का भाषावैज्ञानिक ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक लाभ लेने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। ऐसे में भारतीयों पर संस्कृत भाषा और उसमें निहित ज्ञान को बचाने का ऋषि-ऋण है।

कूटशब्द: भौतिकवाद, अध्यात्मवाद, इहलोक, परलोक

प्रस्तावना
प्रयोजन के बिना मंदबुद्धि वाला व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता- "प्रयोजनमनुद्दिश्य मंदोअपि न प्रवर्तते".फिर वैश्वीकरण के बुद्धि प्रधान युग में संस्कृत भाषा के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह भी है कि लोगों को संस्कृत अध्ययन का प्रयोजन कैसे समझाया जाए? आखिर क्यूं कर आज के बहुभाषी बहुवैकल्पिक युग में प्रचलित इस संस्कृत भाषा का अध्ययन जारी रखा जाए? बहुत लोग सवाल उठाते हैं कि मृत भाषा संस्कृत से आज किस प्रयोजन की सिद्धि होगी?
हिंदी दिवस के अवसर पर कई कार्यक्रमों का मुझे अनुभव है कि अधिकतर वक्ता भारतेंदु हरिश्चंद्र की "निज भाषा उन्नति अहै सब भाषा का मूल"[1] वाले वाक्य को अवश्य उद्धृत कर रहे हैं और हिंदी का गुणगान कर रहे हैं। बात सही भी है कि अपनी भाषा से काम चल जाता है तो दूसरी भाषा पढ़ने सीखने का कष्ट क्यूं उठाया जाए? खासकर संस्कृत जैसी व्याकरणिक शुद्धतावादी भाषा जो अपवादों से भरी है और व्यवहार में नहीं है तथा जिसमें रोजगार की संभावना भी प्रचुर नहीं है, इस भाषा के लिए समय और श्रम क्यों कर खर्च किया जाए?

इन प्रश्नों का उत्तर मुझे भारतेंदु हरिश्चंद्र के ही एक और कथन में मिला, जिसमें उन्होंने कहा है-

"जामै रस कछु होत है पढ़त ताहि सब कोय
बात अनूठी चाहिए भाषा कोऊ होय।।"[2]

इस भाव को सामने रखा जाए तो संस्कृत की प्रयोजनमयता स्वत: सिद्ध हो जाती है। सर्वप्रथम यह सर्वविदित तथ्य है कि सभी लोगों का समान प्रयोजन होता नहीं है। अतएव संस्कृत अध्ययन के जो प्रयोजन बताए जाएं वे सबको अभीष्ट हो, कोई जरूरी नहीं। वास्तविकता तो यह है कि संस्कृत अध्ययन का जो प्रयोजन है, वह आज अधिकतर लोगों के जीवन का प्रयोजन नहीं है। एक ओर "खाओ पियो और मौज करो"का चिंतन रखने वाले चार्वाकवादी दृष्टि प्रचलन में हैं तो दूसरी तरफ अशिक्षित लोगों का समूह है जिन्हें संस्कृत ही नहीं बल्कि किसी भी भाषा के अध्ययन से कोई प्रयोजन नहीं है। "काकोअपि जीवति चिराय बलिंच भुंक्ते" वाले जीवन को चरितार्थ कर रहे हैं। किंतु जो लोग शिक्षा में गहरी रूचि रखते हैं, वे इस दृष्टि को धारण करते हैं कि अन्यों की भाषा सीखने के भी कई प्रयोजन हैं और वे प्रयोजन संस्कृत भाषा अध्ययन के भी हैं।

दरअसल किसी भी भाषा के अध्ययन का मुख्यतः दो प्रकार के प्रयोजन होते हैं-एक तो स्वयं उस भाषा के अध्ययन का प्रयोजन और दूसरा उस भाषा में लिखे गए साहित्य या वांग्मय के अध्ययन का प्रयोजन। जब कोई किसी भाषा का अध्ययन करता है तो वह दो उद्देश्य से करता है-पहला व्यावहारिक उद्देश्य और दूसरा सैद्धांतिक या शास्त्रीय उद्देश्य।

व्यावहारिक उद्देश्य तो यह होता है कि उस भाषा-भाषी के साथ प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित किया जा सके, वार्तालाप में उतरा जा सके ताकि अन्य व्यावहारिक-कार्यसाधन में और आसानी हो जाए। आज अंग्रेजी भाषा अध्ययन का मुख्य प्रयोजन यही है कि अंग्रेजी बोलने वाले लोगों के साथ वार्तालाप हो सके और जो कुछ व्यावसायिक कार्य वगैरह हैं, उनको करने में संवादहीनता न हो। आज मल्टीनेशनल कंपनियां भी अपने उत्पादों के लिए नए क्षेत्रों में जा रही हैं, तो वहां की स्थानीय भाषा का अध्ययन करती हैं। इस अध्ययन का कुल प्रयोजन इतना ही है कि वहां वार्तालाप स्थापित हो सके और उत्पाद बेचने या विनिमय करने में कोई कठिनाई न हो। हिंदी भाषियों की संख्या को देखते हुए ही विदेशी कंपनियां अपना विज्ञापन हिंदी भाषा में बनाती हैं- "जैसे ठंडा माने कोका कोला।"कुछ स्थानों पर हिंदी और इंग्लिश मिलकर हिंग्लिश बन जाते हैं- "जैसे ये दिल मांगे मोर।"

भाषा-अध्ययन-साध्य शास्त्रीय या सैद्धांतिक प्रयोजन यह होता है कि उस भाषा का अपनी भाषा के साथ वैज्ञानिक रीति से तुलना कर सकें कि उस भाषा का अन्य भाषाओं के साथ कैसा संबंध है, अन्य भाषाओं को उसने क्या दिया है और किस रूप में दिया है, साथ ही अन्य भाषाओं से क्या लिया है और किस रूप में लिया है। उस भाषा का अन्य भाषा के साथ धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक संबंध कितने गहरे रहे हैं।

जहां तक किसी भाषा के वांग्मय या साहित्य के अध्ययन का प्रयोजन है,वह ज्ञान की भूख मिटाने के लिए हैं। साथ ही धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष आदि पुरुषार्थों के साधन में उनका ज्ञान सहायक होता है।

उपर्युक्त प्रयोजनों में से निसंदेह संस्कृत भाषा के अध्ययन का व्यावहारिक प्रयोजन नगण्य है। आज विश्व की बात छोड़ दें, स्वयं भारत में भी कोई ऐसा प्रदेश नहीं है,जहां के लोगों का संपूर्ण व्यवहार संस्कृत भाषा में ही अनिवार्यरूपेण होता हो। कई संस्कृत के राष्ट्रीय सम्मेलनों में जाने का अवसर मुझे मिला तो मैंने पाया कि भले ही संस्कृत बोलने की शपथ ली जाती हो किंतु विषय प्रतिपादन के अवसर पर ही सप्रयास संस्कृत बोला जाता है, वह भी अंगुलियों पर गिने जाने योग्य लोगों द्वारा। जब भी सामान्य वार्तालाप सहज माहौल में शुरू हुआ तभी संस्कृत भाषा का व्यवहार गायब हो गया। भाषा बोलने वाला ही नहीं चाहिए बल्कि सुनने वाला भी चाहिए। यदि कोई संस्कृत का विद्वान संस्कृत

में ही बोले और श्रोता समझ ही नहीं पाए तो यह स्थिति हास्यास्पद हो जाती है।

संस्कृत संभाषण शिविरों के माध्यम से संस्कृत को व्यवहार साध्य बनाने का अथक प्रयास किया जा रहा है। लेकिन किए गए श्रम के मुकाबले में पाया गया फल अतुलनीय है। संस्कृत संभाषण शिविर लगाने वाले प्रशिक्षकों का स्तर भी प्रायः अच्छा नहीं होता और प्रशिक्षुओं की जिज्ञासा भी कौतूहलपूर्ण ही होती है। दस दिवसीय शिविर के बाद महज कुछ शब्दों और कुछ श्लोकों से जरूर परिचय हो जाता है लेकिन व्यवहार में भाषा आ जाती हो, ऐसी बात देखने को नहीं मिलती है।

संस्कृत अध्ययन साध्य व्यावहारिक प्रयोजन जितना भी नगण्य है, उतना ही विपुल है इसका शास्त्रीय या सैद्धांतिक प्रयोजन। इसका मूल कारण यह है कि संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में अन्यतमा है। अतः विश्व की अन्य भाषाओं के साथ इसका संबंध कैसा रहा है? किस भाषा को इसने क्या-क्या दिया है? किस-किस भाषा से क्या-क्या लिया है? जैसे-जैसे संस्कृत भाषा का अध्ययन हुआ वैसे वैसे-वैसे रोचक तथ्य उभरकर कर आने लगे। अन्य भाषाओं के साथ इसकी तुलना ने तुलनात्मक भाषाविज्ञान नामक नए विषय को जन्म दिया। भाषा विज्ञान की खोजों से वैश्विक एकता के नए आयाम उभर कर आ रहे हैं। अन्वेषित तथ्य साबित कर रहे हैं संस्कृत, ग्रीक, अवेस्ता, लैटिन आदि भाषाओं के मूल एक ही है। कई शब्दों का परस्पर साम्य बता रहा है कि हम सबके पूर्वज एक थे। इससे विघटनकारी प्रवृत्ति को चुनौती मिल रही है। भारत में ही आज भाषा के नाम पर परस्पर वैमनस्य पैदा करने की कोशिश हो रही है। 1903 में सर रिसले (भारत सरकार के गृह सचिव) आयोग की अनुशंसा के आधार पर भाषाई आधार पर बंगाल का विभाजन किया गया था। तब से 1953 में भाषा के आधार पर बने पहले राज्य आंध्र प्रदेश के गठन का खामियाजा आज तक देश भोग रहा है। अभी महाराष्ट्र में अति उत्साही मराठी प्रेमी सबको मराठी बोलने का आदेश जारी कर रहे हैं। ऐसी प्रवृत्तियों के पीछे कारण यह है कि हमारी भाषा तुम्हारी भाषा से अलग है। ज्यों-ज्यों भाषा वैज्ञानिक स्रोतों के निष्कर्ष सामने आ रहे हैं त्यों-त्यों संस्कृत अधिकतर भारतीय आर्य भाषाओं की जननी सिद्ध होती जा रही है।[3] इससे राष्ट्रीय एकता की दिशा में सकारात्मक पहल हुई है। इस संबंध में जागरूकता बढ़ने पर राजनीतिज्ञों के द्वारा भाषा के आधार पर लोगों को बांटकर राज्य करने की मंशा सफल होनी मुश्किल हो सकती हैं। आज भारत के लिए ही नहीं बल्कि समस्त विश्व के लिए भाषा अध्ययन का यह प्रयोजन संस्कृत अध्ययन में ज्यादा सिद्ध होता है। यही कारण है कि विश्व के विकसित देशों के कई विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन भाषाशास्त्रीय दृष्टिकोण से विशेष रूप से किया जा रहा है।

इसी के साथ संस्कृत भाषा का राष्ट्रीय प्रयोजन भी बहुत महत्वपूर्ण है। मेरी दृष्टि में इसकी विशेष महत्ता इसलिए है कि ऋग्वेद विश्व की प्राचीनतम पुस्तक है और संस्कृत भाषा का वांग्मय जितना व्यापक है, उतना ही विशाल भी। प्राचीनतम भाषा के उत्तराधिकारी होने के साथ-साथ हम सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषा के भी वंशज हैं। क्योंकि इसमें ज्ञानपरक,भावपरक दुर्लभ साहित्य विद्यमान है। वांग्मय का संरक्षण रखरखाव मात्र से नहीं बल्कि अध्ययन- अध्यापन से होता है। भले ही संस्कृत भाषा कोई बोलता न हो किंतु इसके विपुल साहित्य का अध्ययन-अध्यापन भी नहीं हो तो हमारे पास विश्व के सामने गौरव के लिए क्या बचेगा। संस्कृत साहित्य इस बात के प्रमाण हैं कि आज के विकसित कहे जाने वाले देश, जो विश्व को सभ्य बनाना अपनी जिम्मेदारी बताते हैं, जब अस्तित्व में नहीं थे तब भारत अपने ज्ञानपूर्ण वांग्मय के कारण विश्व गुरु के पद पर प्रतिष्ठित था। आज के वैज्ञानिक भी जब संस्कृत भाषा में पाए जाने वाले विज्ञान को पढ़ते हैं तो इस भाषा के अध्ययन के लिए लालायित हो जाते हैं। संस्कृत भाषा में आध्यात्मिक ज्ञान की जो बातें हैं वे आज के अर्थसंपन्न देशों में विशेष आकर्षण और अन्वेषण का केंद्र बने हुए हैं। इस प्रकार संस्कृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन से हमारा राष्ट्र गौरव संरक्षित व संवर्धित होता है। अन्यथा

पाश्चात्य देश कहते हैं कि भारत को हमने सभ्य बनाया, भारत को हमने यह सिखाया, किंतु जब जर्मन ऋषि मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक "भारत हमें क्या सिखा सकता है" लिखा तो विश्व भारत के प्रति श्रद्धावनत हो गया। विदेशियों की रूचि भारत में विशेषकर इसकी संस्कृत भाषा में इतनी बढ़ी कि वे भारत के संस्कृत विद्वानों को अपने यहां बुलाने लगे। संस्कृत वांग्मय में निहित ज्ञान के कारण भारत के कई लोग विश्व के विभिन्न प्रदेशों में कभी योग द्वारा तो कभी ध्यान द्वारा भारत राष्ट्र का गौरव बढ़ा रहे हैं। अतः देश में हमारे राष्ट्रीय और सार्वजनिक संस्थाओं के आदर्श वाक्य संस्कृत में ही हैं। हमारा राष्ट्रीय वाक्य "सत्यमेव जयते"[4] हमारी संस्कृतमूलक संस्कृति का उद्घोष है। दूरसंचार सेवा का उद्घोष 'अहर्निशं सेवामहे' सेवा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को संस्कृत भाषा के माध्यम से ही व्यक्त करता है। इसी प्रकार 'योग:कर्मसु कौशलम्'[5], 'धियो यो नः प्रचोदयात्',[6] 'सा विद्या या विमुक्तये'[7], 'विद्यया अमृतं अश्नुते'[8], "धर्मो विश्वास्य जगत: प्रतिष्ठा[9]" आदि वाक्य विभिन्न संस्थाओं के आदर्श को प्रतिध्वनित करते सर्वत्र दिखाई देते हैं। देश के बाहर या देश के अंदर संस्कृत भाषा साहित्य के अध्ययन से राष्ट्र का गौरव एक अलग तरह से प्रकट हुआ है।

संस्कृत वांग्मय भारतवर्ष ही नहीं बल्कि समस्त मानव जाति की आत्मा की आवाज है। बिना अपनी आत्मा को पाए किसी भी व्यक्ति को कभी शांति नहीं मिल सकती। संस्कृत वांग्मय में उसी आत्मा का अन्वेषण प्रमुखता से किया गया है। इसी कारण से भारतीय संस्कृति अध्यात्म प्रधान संस्कृति कही जाती है। आत्म साक्षात्कार के बिना संसार में पद,पैसा,प्रतिष्ठा मिल जाए फिर भी व्यक्ति को शांति नहीं मिलती। हमने देश, प्रांत, भाषा, जाति, लिंग, धर्म के नाम पर इतनी दीवारें उठा दी है कि अविभक्त मानव विभक्त हो गया है,खंड-खंड हो गया है। संसार का तात्त्विक ज्ञान न होने के कारण लोग सांसारिक वस्तुओं की हानि से अपना संतुलन खो बैठते हैं, लाखों पागल हो जाते हैं। अवसाद और आत्महत्या के शिकार हो जाते हैं। विश्व का "एफिल टावर" जो समृद्ध देश फ्रांस के पेरिस में है, आत्महत्याओं के लिए बदनाम है। उनके सम्मुख जीवन दर्शन का कोई व्यापक आदर्श नहीं है। विशेषकर समृद्ध देशों में नशीले पदार्थों का सेवन, खत्म होती पारिवारिक संस्था, नैतिक दृष्टिकोण से गिरता जीवन अतिभौतिकतावाद के दुष्परिणाम है। हेमलॉक सोसायटी के संस्थापक डेरिफ हम्फ्रीश द्वारा लिखित पुस्तक "फाइनल एग्जिट" अमेरिका में काफी प्रसिद्ध हुई, इसमें आत्महत्या के विभिन्न उपाय बताए गए हैं। जापान में सुरूमी वातारू द्वारा लिखित पुस्तक "द कंप्लीट मैनुअल ऑफ सुसाइड" ने रिकॉर्ड तोड़ बिक्री की। फ्रांस में आत्महत्या करने वालों के लिए मार्गदर्शन युक्त पुस्तक 'सुसाइड यूजर्स इंस्ट्रक्शन' सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तकों में से एक है। एक बार राइटर पत्रिका ने अपने एक अंक 17 मई 1993 में जापान के स्वास्थ्य मंत्रालय की प्रथम बार तैयार स्वास्थ्य रिपोर्ट छापी थी जिसके अनुसार 44 वर्ष से अधिक आयु के लगभग 42% लोग मानसिक रोग से पीड़ित हैं। ऐसी हालत में भारतीय संस्कृत मनीषियों की दृष्टि बहुत काम की है। उन्होंने नियतिवाद और पुनर्जन्म जैसे विचार दिए हैं, जिससे जीवन में सांत्वना मिलती है और जीने की प्रेरणा मिलती है।

प्राकृतिक आपदा या अकल्पित दुर्घटना घटती रहती हैं, जिसमें व्यक्ति समझ नहीं पाता कि आखिर उसका दोष क्या है? उसे किस गलती की सजा मिल रही है? ऐसी परिस्थितियों में यदि कोई अपने को कर्ताधर्ता मान ले तो बहुत तनाव में आ जाएगा क्योंकि उसे उस कर्म का फल भुगतना पड़ रहा है, जो उसने किया ही नहीं। किंतु जब व्यक्ति यह सोचने लगता है कि यह भगवान की इच्छा थी अथवा मेरे किसी पूर्व जन्म के कर्म का फल सामने आया है तो वह ऐसे असहनीय दुखों को सहन करने की स्थिति में आ जाता है।

संस्कृत वांग्मय में शरीर को मरणधर्मा एवं आत्मा को अमर बताया गया है। यहां विवाह संबंध जन्मो-जन्म का संबंध माना जाता है। जब किसी से शादी हो जाती है तो वह व्यक्ति फिर इसे अपना भाग्य मानकर गृहस्थी

के दायित्व को स्वीकार करता है। शरीर में विकार आएगा ही, अतः आज जो सुंदर है, कल दुर्घटनावश या समयवश कुरूप हो जाएगा। अतः परस्पर संबंध शरीर से ऊपर उठकर आत्मा तक पहुंचे। इससे वैवाहिक जीवन में स्थिरता आती है। जो संतानें इसके फलस्वरूप धरती पर आती हैं, उनके प्रति कर्तव्य का बोध जागृत होता है क्योंकि वे आत्मज हैं। अतः भारतीय पारिवारिक जीवन सुखद एवं स्थाई रहा है। लेकिन पश्चिम में स्त्री पुरुष का संबंध सिर्फ शरीर का माना गया, जिससे व्यक्ति जल्द ही ऊब जाता है। इससे वहां तलाक आम बात हो गई है फिर जो बच्चे होते हैं, उनका जीवन मां-बाप के प्यार के बिना खिल नहीं पाता। जिस कारण अब वहां "फैमिली थेरेपी" का प्रचलन हुआ है, जिसमें अवसादग्रस्त लोगों को कृत्रिम परिवार का सुख देकर सामान्य अवस्था में लाया जाता है।

भौतिक सुख साधनों को प्रधानता देने वाली पाश्चात्य सभ्यता के भारत में प्रवेश के साथ ही भारतीय जनता के जीवन दर्शन का दृष्टिकोण बदलने लगा। उनका विश्वास परलोक और पुनर्जन्म में डिगने लगा है। परिणामस्वरूप धैर्य,क्षमा,सहयोग,सामंजस्य, संयम, ब्रह्मचर्य करुणा इत्यादि गुणों का दिनोंदिन ह्रास होता जा रहा है। वेद, पुराण और शास्त्रों की लंबी ज्ञान परंपरा को आधुनिक लोग झूठलाने लगे हैं। सर्वत्र दूरदृष्टि का अभाव हो गया है। फलत: पाश्चात्य जगत के जीवन के दुर्गुण नैराश्य, अधीरता, अवसाद,आत्महत्या की भावना, विक्षिप्तता इत्यादि बढ़ती जा रही हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि पश्चिम जगत का कुछ सकारात्मक प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिख रहा है। उनके वैज्ञानिक आविष्कार के कारण मृत्यु दर घटी है और आयु लंबी हुई है, अनेक बीमारियों और महामारियों पर नियंत्रण पाया गया है। लेकिन जो नकारात्मक प्रभाव पड़े हैं, वे उनकी जीवन दृष्टि अपनाने का परिणाम है।

पश्चिम के लोग हमारे ऋषि चिंतन को अपनाकर लाभ उठाने का प्रयास कर रहे हैं। श्रीमद्भागवत गीता और उपनिषदों के अनुवाद अनेक विदेशी भाषाओं में हो चुके हैं जिन्हें पढ़कर विदेशी जन शांति लाभ कर रहे हैं तथापि उन्हें अनुवाद मात्र से संतोष नहीं हो रहा है ।अब सुधारसोपम संस्कृत भाषा का अध्ययन कर उससे अपने जीवन को धन्य बनाने के लिए व्याकुल हो उठे हैं। भारतीय जीवन दर्शन को जीवन में उतारने के लिए वहां के लोग आतुर हो रहे हैं। वे चाहते हैं कि उनके पारिवारिक जीवन में स्थिरता आ जाए और परस्पर संबंध मधुर हो जाए। यज्ञ के वेद घोष से घर का वातावरण पवित्र बना रहे। गीता पाठ और भागवत परायण से मन उन्नत हो। कुछ दिन पहले राजस्थान पत्रिका में न्यूयॉर्क से एक खबर छपी थी जिसका शीर्षक था "नेवादा यूनिवर्सिटी में गूंजेंगे संस्कृत श्लोक". इसमें लिखा था कि नवादा विश्वविद्यालय की दूसरी सलाना इंटरफेथ सेरेमनी के दौरान हिंदू धर्म ग्रंथों के श्लोकों और मंत्रों का जाप किया जाएगा। यह कार्यक्रम स्नातक कक्षा में पहुंचने वाले छात्रों द्वारा ईश्वर के प्रति आभार प्रकट करने के लिए आयोजित किया जाता है। अमेरिकी विश्वविद्यालयों में इस तरह की पारंपरिक प्रार्थनाओं के आयोजन का इतिहास पुराना रहा है। उस पत्रिका की खबर में आगे लिखा है अमेरिकी विश्वविद्यालयों की विविधतापूर्ण माहौल को ध्यान में रखकर हिंदू धर्म ग्रंथों को इस बार इस धार्मिक सेवा के लिए चुना गया है। नेवादा के अलावा येल विश्वविद्यालय, ब्राउन विश्वविद्यालय, कार्नेल यूनिवर्सिटी आदि में भी ऐसी प्रार्थना सभाओं का आयोजन हो रहा है जिसमें संस्कृत के श्लोक गुंजायमान हो रहे हैं।

ईसा मसीह की रक्त रंजित प्रतिमा यूरोप के गांव-गांव में, नगर-नगर में और अन्य प्रदेशों में भी लटकती हुई दिखाई गई है, पर खेद है कि उसके दर्शन मात्र से वहां की जनता में ऊब और मानसिक असंतुलन की मात्रा कम नहीं हो पा रही हैं। उन्हें तो एक प्रशस्त जीवन दर्शन चाहिए जिसमें भगवान का पुत्र नहीं अपितु स्वयं भगवान अपने भक्तों को विश्वास दिलाए, जीवन मार्ग दिखाए। ऐसा जीवन दर्शन केवल भारत के पास है और वह है निबद्ध देवभाषा संस्कृत में। जीवन को सुख-

शांतिपूर्ण बनाने के लिए भारत में ही नहीं, संपूर्ण विश्व में संस्कृत की अनिवार्यता की अनुभूति हो रही है।

यूरोप यंत्रों का ही चमत्कार कर सका, अपने अंदर झांकने और अंदर की असीम शक्ति को प्रकट करने की बात उसकी चिंतन शक्ति की परिधि से बाहर थी। फलत: वह केवल भौतिक ऐश्वर्य को ही बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर सका। किंतु भौतिक ऐश्वर्य कितना भी बढ़ जाए, इंद्रियातीत आत्मिक सुख और शांति प्रदान नहीं कर सकता ।

आज संस्कृत का थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले व्यक्ति भी संस्कृत के इस अनुपम भंडार के बल पर यूरोपीय प्रज्ञा को चकाचौंध कर रहे हैं। उन्होंने विदेशियों को केवल जप, ध्यान सीखाकर सरलतापूर्वक यह सिद्ध कर दिया है कि अल्पकालिक ध्यान के दैनिक अभ्यास से यांत्रिक युग की यंत्रणाओं से पीड़ित मनुष्य मानसिक तनाव से मुक्त हो सकता है। उसकी कार्य क्षमता बढ़ जाती है व शांति का अनुभव करने लगता है। संस्कृत के प्रत्येक शब्द के उच्चारण से मानव मन पर कितना अच्छा प्रभाव पड़ता है, इसका परीक्षण यंत्रों के द्वारा यूरोपीय वैज्ञानिकों ने किया है। इसका अद्भुत परिणाम मिला और यूरोप संस्कृत विद्या के चमत्कार से अभिभूत हो गया।

पश्चिमी मानव ने विद्युत का आविष्कार कर लिया, जिसके कारण अद्भुत चमत्कार दिख रहा है पर ईश्वर प्रदत मानवीय विद्युत के चमत्कार दिखाने में वह सफल नहीं हो सका। इसके चमत्कार तो भारतीय योगी और तांत्रिक हजारों वर्षों से दिखाते चले आ रहे हैं। योग के द्वारा बिखरी विद्युत को एकत्र कर शरीर रूपी ब्रह्मांड में उस विद्युत का प्रयोग करना पश्चिमी व्यक्तियों को अब भी रहस्य बना हुआ है। संस्कृत मनीषियों ने मन, बुद्धि, कुंडलिनी, आत्मा आदि पर ध्यान लगाया और स्वयं को जानकर वे सब कुछ जान गए।

पूर्व राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम का मानना है कि सिर्फ जीडीपी देश की तरक्की मापने का सही पैमाना नहीं है। इसमें अपनी संस्कृति के मूल्यों और राष्ट्र के अनूठे खोजों की भी झलक मिलनी चाहिए। इसीलिए उन्होंने राष्ट्रीय समृद्धि सूचकांक की नई अवधारणा विकसित की है, जिसमें आत्मबल और चरित्रबल पर जोर दिया है। यह संभव है संस्कृत में निहित ज्ञान को जन-जन तक पहुंचाकर जीवन में प्रयोग लाने पर।

संदर्भ सूची

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र
2. भारतेंदु हरिश्चंद्र
3. 'संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन'- डॉ भोला शंकर व्यास.
4. मुंडकोपनिषद
5. गीता 2.50
6. यजुर्वेद अध्याय 36 मंत्र 3
7. छांदोग्य उपनिषद
8. ईशोपनिषद्, मंत्र ११
9. महानारायणोपनिषद